प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और मानवाधिकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

शशि तिवारी
शोधार्थी
प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
ईमेलः shashitiwari9810@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 07.03.26
Approved: 20.07.26

शशि तिवारी

प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और मानवाधिकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Vol. XVII, Sp. Issue Aug. 2026
Article No.28, Pg. 208-213

Similarity Check: 12%

Online available at
https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-apsmgpc-lkn-2026

DOI: *https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.028*

सारांश

प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति समय के साथ निरंतर परिवर्तनशील रही है। विभिन्न ऐतिहासिक कालखंडों में सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार स्त्रियों के अधिकारों और भूमिकाओं में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिलता है। प्रारंभिक वैदिक काल में महिलाओं को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वे शिक्षा ग्रहण कर सकती थीं, दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेती थीं तथा धार्मिक अनुष्ठानों और वैदिक कर्मकांडों में सक्रिय भूमिका निभाती थीं। गार्गी, मैत्रेयी तथा लोपामुद्रा जैसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख इस बात का प्रमाण है कि उस समय स्त्रियों को बौद्धिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। समय के साथ सामाजिक संरचना में परिवर्तन हुआ और पितृसत्तात्मक व्यवस्था अधिक सुदृढ़ होती गई। उत्तर वैदिक काल से स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकारों में क्रमशः कमी आने लगी। बाल विवाह, दहेज प्रथा तथा पर्दा प्रथा जैसी सामाजिक परंपराओं ने महिलाओं की सामाजिक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को सीमित किया। इसके अतिरिक्त आर्थिक परिवर्तनों तथा विदेशी आक्रमणों के प्रभाव ने भी स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया।

यद्यपि मानवाधिकार की आधुनिक अवधारणा मुख्यतः आधुनिक युग की देन मानी जाती है, किंतु इसके मूल तत्व–जैसे मानव गरिमा, शिक्षा का अधिकार और सामाजिक सहभागिता, प्राचीन भारतीय साहित्य और परंपराओं में भी विभिन्न रूपों में विद्यमान थे। यह अध्ययन दर्शाता है कि भारतीय परंपरा में स्त्री सम्मान और सामाजिक समानता की अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है तथा इन ऐतिहासिक परंपराओं को समझना वर्तमान समय में लैंगिक समानता के प्रयासों को एक सुदृढ़ आधार प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्दः *प्राचीन भारत, स्त्री, मानवाधिकार, स्त्रीधन, समाज, शिक्षा*

**This article has been peer-reviewed by the Review Committee of JGV.*

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.028

परिचय

किसी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियां एवं श्रेष्ठताओं का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। स्त्री की स्थिति किसी भी देश की संस्कृति का मानदंड मानी जाती है।. हिंदू समाज में इसका अध्ययन निश्चयतः उसकी गरिमा को प्रकट करता है (Altekar, 1962)। वैदिक काल से लेकर बाद के विभिन्न युगों तक भारतीय संस्कृति में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया है (Thapar, 2002)। भारतीय सभ्यता में समाज की संरचना धर्म, कर्तव्य और नैतिक मूल्यों पर आधारित थी। इन मूल्यों में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी। समाज के आदर्शों और मूल्यों का संरक्षण भी उन्होंने अत्यंत सफलतापूर्वक किया है (Singh, 2008)। भारतीय इतिहास में नारी की स्थिति विषयक प्रसंग बड़े ही कौतूहलपूर्ण तथा परस्पर विरोधात्मक रहे हैं। जिसके फलस्वरूप कभी तो नारी को देवी का रूप दे दिया गया, तो कभी उसे समस्त सांसारिक सुख–वैभव का कारण माना गया। उसे पुरुष की अर्धांगिनी घोषित करके सभी प्रकार के धार्मिक कृत्यों के संपादन हेतु उसकी उपस्थिति को अनिवार्य बना दिया गया और कभी उसे समस्त दुर्गुणों की खान ठहराया गया (Kosambi, 1996)।

परंतु वैदिक काल में नारी का विशेष स्थान रहा है। उन्होंने आध्यात्मिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सीता, गार्गी, अनुसुइया एवं सावित्री इसके अच्छे उदाहरण हैं। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति समाज में उच्च श्रेणी की थी। उन्हें अपने स्वभाव और इच्छा के अनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता थी (Altekar, 1962)। महिलाएं कम उम्र में ही शिक्षित हो जाती थीं और सभी धार्मिक कार्यों में भाग लेती थीं। कुछ स्त्रियों को पुरोहित के रूप में भी सम्मान प्राप्त था। बेटा हो या बेटी, उनके पालन–पोषण में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था (Sharma, 2005)। सिंधु सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त नृत्य करती हुई स्त्री की प्रतिमा से यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय स्त्रियों को सांस्कृतिक गतिविधियों में स्थान प्राप्त था (Kosambi, 1996)। प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होने के संकेत भी मिलते हैं (Singh, 2008)। उत्तर वैदिक समाज में ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो जीवन भर अविवाहित रहीं तथा उन्होंने शिक्षा, युद्ध और शास्त्रार्थ में भाग लिया। जैन तथा बौद्ध काल में भी स्त्रियों की स्थिति कई मामलों में संतोषजनक रही और उन्हें धार्मिक संघों में सम्मिलित होने का अवसर मिला (Thapar, 2002)।

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन केवल सामाजिक इतिहास को समझने का माध्यम नहीं है, बल्कि यह मानवाधिकार की ऐतिहासिक जड़ों को समझने का भी महत्वपूर्ण तरीका है। आज मानवाधिकार की अवधारणा अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजों जैसे मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, किंतु इसके मूल तत्व–समानता, गरिमा, शिक्षा का अधिकार और सामाजिक, सहभागिता, प्राचीन सभ्यताओं में भी विभिन्न रूपों में मौजूद थे (Roy, 2010)।

उद्देश्य–

1. प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण करना।
2. वैदिक, उत्तरवैदिक तथा स्मृति काल में स्त्रियों की स्थिति में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करना।
3. प्राचीन भारतीय परंपरा में मानवाधिकार की अवधारणा के तत्वों की पहचान करना ।
4. स्त्रियों के अधिकारों और कर्तव्यों के बीच संबंध को समझना।

इस अध्ययन के लिए स्रोतों में वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रीय ग्रंथ, कुछ आधुनिक इतिहासकारों और विद्वानों की पुस्तक शामिल है। डॉ उर्मिला प्रकाश मिश्रा ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में नारी में नारी के विविध रूपों तथा वर्ग विभिन्नता के आधार पर जीवन के आदर्शो व स्थितियों में भी भिन्नता थी उनके पुस्तक से पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में नारी पर लगे निबंधों के मूल में कार्य करने वाली भावनाओं तथा प्रवृत्तियों को जानने का प्रयास किया गया है ए. एस. अल्टेकर ने अपनी पुस्तक **द पोजीशन ऑफ़ वीमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन**

में यह तर्क दिया कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत उच्च थी ,परंतु उत्तर वैदिक काल में सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों के कारण उनकी स्वतंत्रता में कमी आई। कुमकुम राय ने अपनी पुस्तक **द पावर ऑफ जेंडर एंड द जेंडर ऑफ़ पावर** प्राचीन भारत में लिंग आधारित शक्ति संरचना को समझने का प्रयास किया है।

हिंदू सभ्यता में स्त्रियों को अत्यंत आदरपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। भारत की प्राचीन सभ्यता सैन्धव सभ्यता में धर्म में माता को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना उसके समाज में उन्नत स्त्री दशा का सूचक माना जा सकता है (Kosambi, 1996)। ऋगवैदिक काल में समाज ने उसे आदरपूर्ण स्थान दिया उसके धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार पुरुषों के ही समान थे (Altekar, 1962)। विवाह एक धार्मिक संस्कार माना जाता था, दंपति घर के संयुक्त अधिकारी होते थे। यद्यपि कहीं–कहीं कन्या के नाम पर चिंता व्यक्त की गई है किंतु स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा, शील, गुण, कर्तव्य, अधिकार और सामाजिक भूमिका का जो सुंदर वर्णन पाया जाता है, वैसा संसार के अन्य किसी धर्मग्रंथ में नहीं है (Sharma, 2005)।

वेदों ने तो उन्हें घर की सम्राज्ञी कहा है। देश की शासक तथा पृथ्वी की सम्राज्ञी बनने तक का अधिकार दिया गया है। वेदों में नारी को यज्ञ समान पूजनीय बताया गया है। वेदों में नारी को ज्ञान देने वाली, सुख समृद्धि लाने वाली, विशेष तेज वाली देवी, विदुषी, इंद्राणी, सरस्वती, उषा नाम दिए गए हैं (Rao Shastri, 1954)। वेदों में स्त्रियों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है उसे सदा विजयनी कहा गया है। उनके हर काम में सहयोग और प्रोत्साहन की बात की गई है (Altekar, 1962)। ऋग्वैदिक काल में वेद से हमें यह पता चलता है कि उस काल में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी। शिक्षा के अलावा वह किसी भी प्रकार के सामाजिक बंधन से मुक्त थी। ऋग्वैदिक काल में समाज में उसे आदरपूर्ण अधिकार प्राप्त था। धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरुषों के समान थे (Singh, 2008)।

ऋग्वेद के अनेक मंत्रों की रचना महिलाओं द्वारा की गई है। इसके उदाहरण विश्ववारा, लोपामुद्रा, सिक्ता, घोषा आदि हैं (Rao Shastri, 1954)। पिता विदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति हेतु यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठान करते थे। इस काल में शिक्षा में कोई लैंगिक भेदभाव नहीं था (Altekar, 1962)। कन्या को वैसे ही शैक्षणिक अधिकार प्राप्त थे जैसे पुत्र को प्राप्त थे। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था और वे गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण किया करती थीं (Sharma, 2005)। महिलाएं वाद–विवाद भी करती थीं। कन्याओं का विवाह 15 से 16 वर्ष की आयु में होता था। समाज में न तो सती प्रथा थी और न पर्दा प्रथा (Sharma, 2005)।

भारतीय संदर्भ में वेदकालीन समाज पितृसत्तात्मक होने के बावजूद वहाँ नारी का बड़ा सम्मान था (Thapar, 2002)। शिक्षित स्त्रियों को उनकी विद्वता के आधार पर "ऋषि" और "ब्राह्मणी" कहा जाता था (Altekar, 1962)। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को "सहधर्मिणी" कहा जाता था जिसका अर्थ था कि वह पुरुष के साथ धर्म पालन में समान भागीदार थी। परंतु उत्तर वैदिक काल के आते–आते नारी पुरुष के अधीन हो गई और महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आने लगा। उत्तर वैदिक काल में उन्हें कुछ अधिकारों से वंचित रखा गया किंतु उनकी सामान्य स्थिति संतोषजनक बनी रही। जैसे उन्हें शिक्षा प्राप्ति का अधिकार था, उनका उपनयन संस्कार होता था ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए अध्ययन करती थी (Altekar, 1962; Sharma, 2005)।

अथर्ववेद में ही कहा गया है कि ब्रह्मचर्य द्वारा ही कन्या योग्य पति को प्राप्त करने में सफल होती है (Rao Shastri, 1954)। विवाहित स्त्रियों को हम यज्ञ में भाग लेते हुए पाते हैं। कुछ स्त्रियों ने धर्म एवं दर्शन के क्षेत्र में निपुणता तथा विद्वता को प्राप्त कर लिया था (Thapar, 2002)। किंतु समय के प्रवाह के साथ हम स्त्री शिक्षा में गिरावट पाते हैं कन्याओं को गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजने की प्रथा समाप्त हो गई थी, तथा घर पर ही शिक्षा देने का समर्थन किया गया (Sharma, 2005)। परिणाम स्वरुप उनके धार्मिक अधिकार काम हो गए (Singh, 2008)। स्त्रियों का सामाजिक समारोह में जाना बंद हो गया था। इस काल के समाज ने भी स्त्री के धन संबंधी अधिकारओ को मान्यता

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.028

प्रदान नहीं की, बल्कि अलतेकर का विचार है कि वैदिक काल की राजनीतिक आवश्यकताएं ही प्रागैतिहासिक सती प्रथा की समाप्ति तथा नियोग एवं पुनर्विवाह को मान्यता प्रदान किए जाने के लिए उत्तरदायी थी (Altekar, 1962)।

शतपथ ब्राह्मण से पता चलता है कि गृह कार्यों एवं उत्तरदायित्व के निर्वाह में स्त्री पुरुष की समान भागीदारी होती थी (Sharma, 2005)। अविवाहित युवतियों को धार्मिक कर्मकांड में भाग लेने का अधिकार नहीं था। यज्ञों के अवसर पर मंत्रों का गायन पत्नी द्वारा ही संपन्न किया जाता था (Rao Shastri, 1954)। सूत्रकाल में स्त्रियों की दशा पतनोन्मुख हो गई थी। स्त्रियों का उपनयन संस्कार बंद हो गया था। विवाह के अलावा उनसे संबंधित अन्य संस्कारों में वैदिक मित्रों का उच्चारण नहीं होता था (Sharma, 2005)। कन्याओं के विवाह की आयु भी घटाकर 9 से 12 वर्ष कर दी गई थी (Altekar, 1962). किंतु अभी भी कुलीन परिवारों में कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी। राजपरिवार की महिलाएं शिक्षित थी, उन्हें ललितकलाओं, संगीत, नृत्य, चित्र आदि में विधिवत शिक्षा दी जाती थी (Thapar, 2002)। वात्स्यायन ने लिखा है कि स्त्रियों को 64 कलाओं में दक्ष होना चाहिए (Singh, 2008)।

एक दिशा में स्त्री की दशा में सुधार हुआ वह था वैदिक काल में उसे संपत्ति संबंधी अधिकार नहीं दिया गया था किंतु अब पुनर्विवाहों के अभाव में विधवा एवं पुत्रहीन स्त्रियों की संख्या में वृद्धि हुई। अतः उनके पोषण और विवाह के निम्मित व्यवस्थाकारों ने उनके धन संबंधी अधिकार को मान्यता देना प्रारंभ कर दिया क्रमशः उनका धन संबंधी अधिकार मान्य हो गया (Kane, 1973)। पांचवी से 12वीं शताब्दी तक स्त्रियों की दशा और दयनीय होती चली गई उनके पास एकमात्र धन संबंधी अधिकार ही बचा था जिसे स्त्रीधन कहा गया (Banerjee, 1984)। इस काल में स्त्रीधन का क्षेत्र व्यापक हो गया उसमें उत्तराधिकार एवं विभाजन की संपत्ति को भी सम्मिलित कर दिया गया (Kane, 1973)। मिताक्षरा तथा दयाभाग में स्त्री को मृत पति की संपत्ति का पूर्ण अधिकारी घोषित किया गया (Kane,1973)।

प्राचीन काल में स्त्री को स्वयं चल संपत्ति माना जाता था और उसे उपहार में दिया जा सकता था (Sharma, 2005)। पति का अपनी पत्नी के ऊपर पूर्ण अधिकार माना जाता था। पहली बार कौटिल्य ने ही कन्या को धन संबंधी अधिकार प्रदान करते हुए पुत्र पुत्री को पिता की संपत्ति में बराबर का अधिकारी माना था (Sharma, 2005; Singh, 2008)। अलतेकर का विचार है कि स्त्रीधन का विकास कन्या मूल्य से हुआ जो असुर विवाह के अंतर्गत वर कन्या के पिता को प्रदान करता था (Altekar, 1962)। मनु के अनुसार पति की अनुमति के बिना पत्नी निजी संपत्ति को बेच नहीं सकती है (Banerjee, 1984)।

जैन और बौद्ध काल में भी स्त्रियों की स्थिति का विश्लेषण किया जाता है जिसमें हम देखते है कि जैन काल में स्त्रियों ने घरों से निकलकर सामाजिक, आर्थिक सुधार और राजनीतिक क्षेत्र में अपनी भागीदारी समाज के समक्ष रखी (Singh, 2008)। जैन काल में पुरुष और स्त्री दोनों जो जैन संघ में शामिल थे उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना था जिसकी वजह से ही जैन संघों द्वारा स्त्रियों पर कठोर प्रतिबंध लगाए गए थे। जैन धर्म में स्त्रियों को सम्मान दिया तथा 19वीं तीर्थंकर मल्लिनाथ भी एक स्त्री थी। बौद्ध काल में भी महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी उन्हें वे सभी कार्य करने की छूट थी जो पुरुष कर सकते थे। इस समय समाज में वेश्यावृत्ति का काफी प्रचलन था। और समाज वेश्याओं को अच्छी दृष्टि से देखता था। महिलाओं वे सभी कार्य करने की छूट थी जो पुरुष कर सकते थे (Singh, 2008)। महात्मा बुद्ध ने आनंद के कहने पर स्त्रियों को बौद्ध धर्म में शामिल किया (Thapar, 2002)।

मौर्य काल में स्त्रियों की स्थिति भी अच्छी थी स्त्रियां शासको के अंगरक्षकों के रूप में कार्य करती थी उन्हें इस कार्य के बदले राज्य से वेतन मिलता था (Sharma, 2005)। कौटिल्य अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में लिखते हैं कि इस समय स्त्रियां गुप्तचर का काम भी किया करती थी (Sharma, 2005)। मौर्य काल में स्त्री को अपने पास संपत्ति और रुपए रखने का अधिकार था स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से विवाह करने की अनुमति थी अगर किसी पति पत्नी को विवाह के बाद तलाक लेना होता था तो वह तलाक भी ले सकते थे। कौटिल्य लिखते हैं कि समाज में दास प्रथा भी प्रचलित थी स्त्रियों को भी दास बना दिया जाता था। वेश्यावृत्ति प्रचलित थी और वैश्यों को समाज में विवाह करने की आज्ञा भी थी।

गुप्त काल को स्वर्ण युग के रूप में माना जाता है किंतु गुप्त काल के बहुत से अभिलेखीय और साहित्यिक साक्ष्यों से हमें ग्रामीण समाज की स्थिति का भी ज्ञान मिलता है (Thapar, 2002)। गुप्त काल में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आई तथा उन्हें उपभोग की वस्तु समझा जाने लगा (Singh, 2008)। चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती ने शासिका के रूप में कार्य किया (Thapar, 2002)। गुप्त काल में सर्वप्रथम सती प्रथा का अभिलेखीय साक्ष्य 510 ईस्वी में मिलता है (Altekar,1962)। इस युग में बाल विवाह जोर पर था (Sharma, 2005)।

इस प्रकार प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति स्थिर नहीं थी बल्कि समय और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार उसमें परिवर्तन होता रहा। मानवाधिकार के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए, प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन आधुनिक मानवाधिकार दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि मानवाधिकार की औपचारिक अवधारणा आधुनिक काल में विकसित हुई, विषेश रूप से 1948 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के बाद, किंतु इसके मूल तत्व प्राचीन समाजों में भी विभिन्न रूपों में विद्यमान थे। (Sharma, 2005).

भारतीय परंपरा में अधिकारों की अवधारणा प्रायः कर्तव्यों के साथ जुड़ी हुई थी। धर्म, नैतिकता और सामाजिक कर्तव्य समाज की संरचना के प्रमुख आधार थे। इस व्यवस्था में स्त्रियों को परिवार और समाज के संरक्षण तथा नैतिक मूल्यों के संवाहक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। वैदिक साहित्य में स्त्री को 'सहधर्मिणी' और 'गृह की सम्राज्ञी' कहा गया है, जो यह दर्शाता है कि पारिवारिक और धार्मिक जीवन में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती थी। (Altekar, 1962).

वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने तथा वैचारिक विमर्श में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त था। यह स्थिति आधुनिक मानवाधिकारों की कुछ मूलभूत अवधारणाओं–जैसे शिक्षा का अधिकार, सामाजिक सहभागिता तथा गरिमा, से मेल खाती है। (Thapar, 2002). हालाँकि समय के साथ सामाजिक संरचना में परिवर्तन होने लगा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था अधिक प्रभावी होती गई। इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों की स्वतंत्रता और अधिकारों में क्रमशः कमी आने लगी। बाल विवाह, पर्दा प्रथा तथा सती प्रथा जैसी सामाजिक प्रथाओं ने स्त्रियों की स्वायत्तता को सीमित किया और उनके सामाजिक अधिकारों को प्रभावित किया (Singh, 2008)। आधुनिक नारीवादी इतिहासलेखन ने प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार स्त्रियों की स्थिति को केवल सामाजिक प्रतिबंधों के आधार पर नहीं, बल्कि उनके वास्तविक योगदान और उपलब्धियों के संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए (Roy, 2010).

उपसंहार

प्राचीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न कालखंडों में उनके अधिकारों और भूमिकाओं में निरंतर परिवर्तन होता रहा। वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने तथा सामाजिक गतिविधियों में योगदान देने का अवसर मिलता था। उस समय स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी माना जाता था और परिवार तथा समाज के निर्माण में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती थी। परंतु उत्तर वैदिक काल से स्त्रियों की स्थिति में धीरे–धीरे परिवर्तन दिखाई देने लगा। सामाजिक संरचना के अधिक पितृसत्तात्मक होने तथा परंपराओं के कठोर होने के कारण स्त्रियों के अधिकारों में कमी आने लगी। शिक्षा के अवसर सीमित होने लगे और विवाह की आयु में भी कमी देखी गई। परिणामस्वरूप स्त्रियाँ धीरे–धीरे सार्वजनिक जीवन से दूर होती चली गईं।

जैन और बौद्ध काल में स्त्रियों को पुनः धार्मिक जीवन में भाग लेने के अवसर प्राप्त हुए। अनेक स्त्रियों ने संन्यास ग्रहण कर धार्मिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई। मौर्य काल में भी स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत संतोषजनक थी और उन्हें आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। किंतु गुप्त काल तक आते–आते सामाजिक

https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI08.028

रूढ़ियों के प्रभाव से स्त्रियों की स्थिति में कुछ गिरावट देखी गई। फिर भी यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों को पूर्णतः उपेक्षित नहीं किया गया था। विभिन्न कालों में अनेक स्त्रियों ने शिक्षा, धर्म और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गार्गी, मैत्रेयी, चंदना और प्रभावती गुप्ता जैसी विदुषी एवं प्रभावशाली महिलाओं के उदाहरण इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि स्त्रियाँ केवल पारिवारिक जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि उन्होंने बौद्धिक और सामाजिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मानवाधिकार के आधुनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियों को प्राप्त सम्मान, शिक्षा का अवसर तथा सामाजिक सहभागिता के संकेत इस बात को दर्शाते हैं कि समानता और गरिमा की अवधारणा भारतीय परंपरा में प्रारंभिक रूप से विद्यमान थी। यद्यपि समय के साथ सामाजिक परिस्थितियों के कारण स्त्रियों की स्थिति में उतार–चढ़ाव आया, फिर भी इतिहास में निहित ये उदाहरण वर्तमान समय में लैंगिक समानता, महिला अधिकारों तथा मानवाधिकारों की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान करते हैं।

संदर्भ

1. डॉ उर्मिला प्रकाश मिश्रा प्राचीन भारत में नारी
2. डॉ रामशरण शर्मा– प्राचीन भारत का इतिहास
3. डी. डी. कोसांबी– प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता
4. रोमिला थापर – प्राचीन भारत
5. आर. एस. शर्मा – भारत का प्राचीन इतिहास
6. उपेंद्र सिंह – प्राचीन और प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास
7. Altekar, A.S. – The Position of Women in Hindu Civilization
8. के.सी. श्रीवास्तव –प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
9. डॉ लता सिंघल –भारतीय संस्कृति में नारी
10. शकुंतला राव शास्त्री – वूमेन इन दि वैदिक एज
11. गुरूदास बनर्जी – हिंदू लॉ ऑफ़ मैरिज एवं स्त्रीधन
12. डॉ डी .एन. झा – प्राचीन भारत एक रूपरेखा
13. डॉ रामशरण शर्मा – प्रारंभिक भारत का परिचय
14. डॉ जयशंकर मिश्रा – प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास